अध्याय–3 : मानवीय शरीर की रचना : अंग,उपांग और प्रत्यांग का योग और नृत्य में उपयोग

मानव शरीर का अध्ययन हजारों, लाखो वर्षो से हमारे ऋषिमुनिओं ने किया है । मानव शरीर की रचना बहुत ही सुंदर है और उतनी ही जटील है । इसे समझने के लिए कई सारे शास्त्र लिखे गए हैं । शरीर की रचना की कई सारे प्रकारों से समझने की कोशिश की गई है और समझा भी जा चुका है । लेकिन अभी भी हम पूरी तरह से मानव शरीर की रचना को कई बार समझ नहीं पाते हैं । मानव शरीर को वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत ही बारीकी से समझाया गया है । जिससे उसमें होने वाले बहुभाव पीड़ा या रोग को समझा जा सकें और उस पर नियंत्रण करके उपचार किया जा सकें । मनुष्य प्रकृति की सबसे सुंदर रचनाओं में से एक है । मनुष्य को प्रकृति ने वो दिया है जो अन्य जीवों के पास नहीं है । जैसे की एक सुंदर शरीर, सोचने की शक्ति तथा बुद्धि । मनुष्य को अपने जीवन काल में कई सारे प्रश्न होते हैं जैसे की वो कहां से आया उसकी उत्पत्ति कहां से हुई वह कौन है आदि हमारे विद्वानों के अनुसार मनुष्य की रचना वैज्ञानिक और आध्यात्मिक दोनों तरीके से हुई है । यह दोनों अपने–अपने दृष्टिकोण से मानव उत्पत्ति को दर्शाते है । धर्म और विज्ञान अपने–अपने तरीके से मानव शरीर की रचना के तथ्य देते हैं । विज्ञान के अनुसार मानव जीवन का इतिहास समुद्र से जुड़ा है । पृथ्वी पर सर्वप्रथम पानी में जीवन विकसित हुआ जैसे – मछली, अमीबा आदि जीव जैसे–जैसे समय बढता चला गया वैसे–वैसे पानी में रहने वाले जीवों ने जमीन पर रहना शुरू किया । ऐसे जीव आए जो जल और थल में जीवन जीते रहें । समय बदलता रहा और प्रकृति अपना कार्य करती रही और जीवों की मृत्यु और जन्म होते रहे । इसी प्रकार कई प्रजातिओं का विकास होता रहा और कई प्रजातियां विलुप्त हो गई । यह क्रम ऐसे ही चलता रहा और डायनासोर, चिम्पाजी, वानर, वनमानुस हुए और इसके बाद ही पैरों वाले मनुष्य का विकास हुआ । विज्ञान के अनुसार वानर ही मनुष्य जाति के रचनाकार है । अपनी सोचने और समझने की शक्ति द्वारा वानर जैसा प्राणी दो पैरो पर चलना सीख गया और जंगल में फल और मांस खाकर अपनी भूख मिटाने लगा और इसी तरह वानरों की बुद्धि का विकास होने लगा और मनुष्य का रूप लेने में सक्ष्म हो गए । अब यह मानव सभी अंगो का उपयोग करने लगा । इस प्रकार मानव बुद्धिजीवी बन गया

और मानव ने अपना जीवन सरल करने के लिए प्रकृति द्वारा दिए गए उपहारों का लाभ लिया ।

धर्म की दृष्टि से मानव जाति का जन्म हिन्दु मान्यता के अनुसार मानव वानर का विकसित रूप नहीं है । पौराणिक ग्रन्थो के अनुसार वानर और मनुष्य जाति की उत्पत्ति में भिन्नता है। धर्म के अनुसार मनुष्य की रचना भगवान द्वारा की गई है । मनुष्य जो संसार में रहता है उसकी रचना भी भगवान द्वारा ही की गई है । इस संसार में जो मानव सबसे पहले आया था उसीने मनुष्य जाति को जन्म दिया है । हिन्दु धर्म के अनुसार संसार का सबसे पहला मनुष्य था मनु जिसके आधार पर ही इस जाति का नाम मानव जाति पडा । पुराणों में भी यह बात की पुष्टि मिलती है । एक पौराणिक कथा के अनुसार मनु की रचना ब्रह्माजी द्वारा की गई थी । इस कथा के अनुसार ब्रह्माजीने मानव संसार के लिए दो लोगों को बनाया था । एक नर और दूसरा नारी । ब्रह्माने जो दो आत्माओं की संसार की रचना के लिए बनाया था उसमें जो नर था वो मनु और जो नारी थी उसका नाम था शत्तरूपा । मनु शब्द का पर्यायवाची शब्द संस्कृत भाषा का मनुष्य शब्द है और अंग्रेजी का मेन है । ईसाई धर्म में जो बाईबल है उसमें भी मनु का उल्लेख मिलता है । बाईबल में भी मानव संसार की रचना ईश्वर द्वारा ही हुई है ऐसा कहा है । बाईबल के अनुसार ईश्वर के शरीर से एक परछाई ने जन्म लिया था और इस परछाई को एडम नाम दिया था । इन दोनों कथाओं से यह तथ्य निकलता है कि मानव कुल के रचियता मनु थे जिनकी रचना ईश्वर द्वारा की गई थी । इस प्रकार देखा जाए तो विज्ञान और धर्म में मनुष्य की रचना के तथ्य अलग–अलग है । विज्ञान के अनुसार मानवतावादी का विकास वानरो द्वारा हुआ है और धर्म के अनुसार मनुष्य जाति की रचना भगवान द्वारा हुई है ।

3.1 मानवीय शरीर रचना एवं कार्यपद्धति :

मानवीय शरीर रचना एवं कार्यपद्धति में मानव शरीर को तीन भागों में विभाजित किया जाता है सिर, धड़ और , हाथ–पांव । धड़ को दो हिस्सो में बाँटा गया है – छाती और पेट । इन दोनों के बीच में श्वास पटल (डायग्राम) होता है जो जोड़ने वाला या अलग करने वाला भाग माना जाता है ।

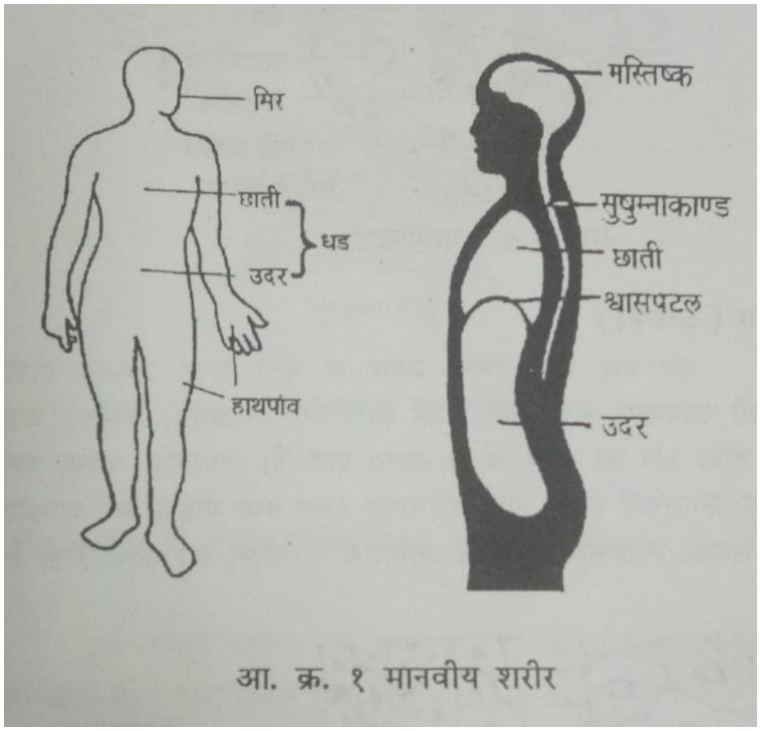

आ. क्र. १ मानवीय शरीर

(आवृत्ति : 1. मानवीय शरीर (शरीर विज्ञान और योगाभ्यास, डॉ. मकरंद मधुकर गोरे), पेज नं. 13)

3.2 पेशी और पेशी समूह :

हमारे शरीर की सम्पूर्ण रचना तथा कार्य का पेशी (सेल) है । जिस प्रकार हर मनुष्य समाज की रचना और सामाजिक कार्य प्रणाली का एक घटक है । अलग–अलग प्रकार की पेशीयां अपनी रचना, आकार, स्थान और कार्य के आधार पर इकट्ठा होती है । एक ही प्रकार की कई सारी पेशियों की एक साथ मिलाकर एक समूह (टिश्यूज) बनता है । जैसे की त्वचापेशी समूह (ऐपिथेलियल टिश्यूज) स्नायुपेशी समूह (मस्क्यूलर टिश्यूज), नाड़ी पेशी समूह (नव्हर्स टिश्यूज) आदि ।

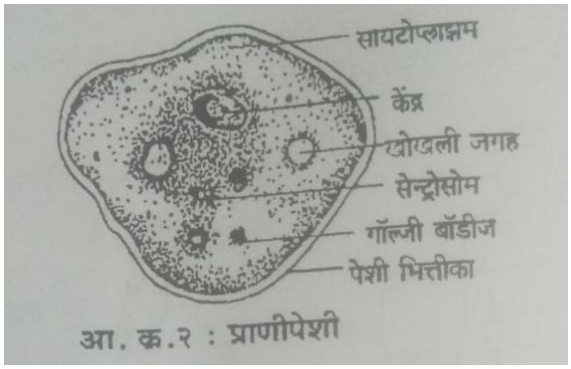

आ. क्र.२ : प्राणीपेशी

(आ.क्र. 2, प्राणी पेशी)

3.3 अंग (अवयव) :

अलग–अलग प्रकार के पेशी समूह मिलकर आमाशय, बडी आंत, हृदय आदि अंग या अवयव बनते हैं । सभी अंगों को कार्य अलग प्रकार के होते हैं । आमाशय द्वारा पाचन कार्य होता है । आमाशय अलग–अलग पेशीयों से बनता है जिसमें त्वचा पेशी समूह नाडीपेशी समूह, स्नायु पेशी समूह नीला तथा रोहिणी की शाखाएँ इस प्रकार इन के समूह से बनता है ।

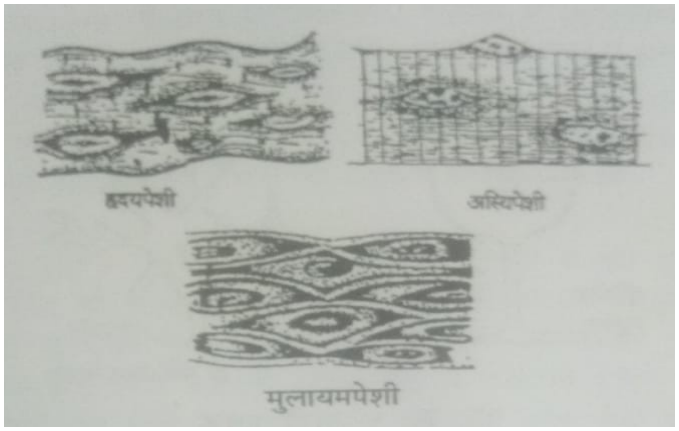

(आ.क्र.3, विविधपेशी समूह एवं आ.क्र. 4, स्नायुपेशी)

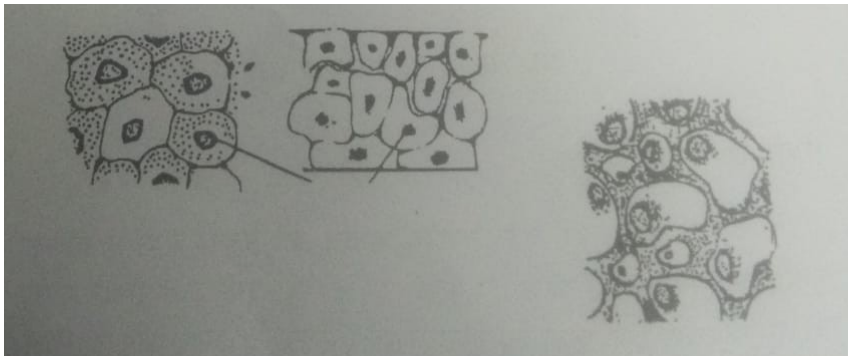

3.4 विभिन्न तंत्र व शरीर (सिस्टम एण्ड बॉडी) :

एक ही उद्देश्य को ध्यान में लेकर जैसे अलग–अलग काम करने वाले व्यक्ति एकजूट होकर संगठन बनाते हैं । उसी तरह एक विशेष कार्य के लिए अनेक अवयव या अंग मिलकर काम करते हैं । अवयव एक–दूसरे के साथ रचनात्मक और कार्यात्मक हेतु से जुड़े होते हैं । उदाहरण पाचन तंत्र, नाड़ी तंत्र आदि विभिन्न तंत्र एक साथ काम करते हैं जिसके कारण हमारा शरीर बनता है । हमारा शरीर बाह्य वातावरण में आने वाले बदलाव को सहन कर सकता है और अपने अस्तित्व को कायम रखता है । इसका मुख्य कारण हमारे शरीर के सभी अंग प्रत्यंगो में एकता, तोल, अखंडता, सामंजस्य और सहकार्य है । इनका एकसाथ काम करना कुदरती हैं जो योग और नृत्य में महत्वपूर्ण व उपयोगी साबित होता है ।

3.4.1 पाचन तंत्र :

शरीर को पोषक तत्व देना पाचन तंत्र का मुख्य उद्देश्य है । पाचन तंत्र का कार्य अन्न को जिन पदार्थो का पाचन न हुआ हो या पाचन प्रक्रिया में बचे हुए पदार्थो को शरीर से बाहर फेंकने का कार्य पाचन तंत्र करता है ।

पाचन प्रणाली के अंग : पाचन प्रणाली के अंगो में मुख, दांत, जिह्वा, गला, अन्न नलिका, क्षुद्रान्त्र (छोटी आंत), बृहदन्त्र (बड़ी आंत), आमाशय, पित्तकोष, अग्न्याशय, मलाशय, यकृत, गुदा यह सारे अंगों से पाचन तंत्र बनता है । जिह्वा रस को ग्रहण करते हैं और बोलने का कार्य यानि की ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों का कार्य करती है । अन्न नलिका गले से शुरू होकर छाती से नीचे श्वास पटल से होकर आमाशय में खुलती है । आमाशय के दूसरे सिरें से छोटी आंत शुरू होती है इसकी लंबाई 22 फूट होती है । छोटी आंत के आखिरी भाग में शरीर के दाहिने भाग में बड़ी आंत शुरू होती है । बड़ी आंत का आकार अंग्रेजी अक्षर 'यू' के उल्टे अक्षर जैसी होती है । बड़ी आंत के अंत भाग में मलाशय उसके बाद या मंडलाकार पाचन नलिका की पेशियों का आकार गोलाकार या मंडलाकार और सीधा ऐसे दो प्रकारनी होती है । यह पेशियां स्वायत्त है जो संकोचन खुद ही शुरू करती है । यह पेशियां एक के बाद एक संकोच और प्रसरण करके अपनी तरंगे उत्पन्न करके अन्न द्रव्य को आगे बढ़ाती है जैसे–जैसे आहार के द्रव्यो का दबाव दीवारों पर पड़ेगा वैसे ही संकोच की लहर होगी । छोटी आंत केवल 5–7 फीट लंबी होती है । गुर्दा के खुलने और बंध होने की क्रिया इन्हीं स्नायुओं पर निर्भर है । मलविसर्जन को हम बचपन से ही नियंत्रित करने की क्षमता हो जाती है । पेट की त्वचा के

नीचे स्नायुबंध होते हैं जिनको अेब्डोमिनल्स रेक्टाय कहा जाता है । इसके दबाव से पेट के सभी अंग स्थान पर रहते हैं । इसी कारण स्नायु पेशी का संकोचन सुयोग्य तरीके से होना जरूरी है ।

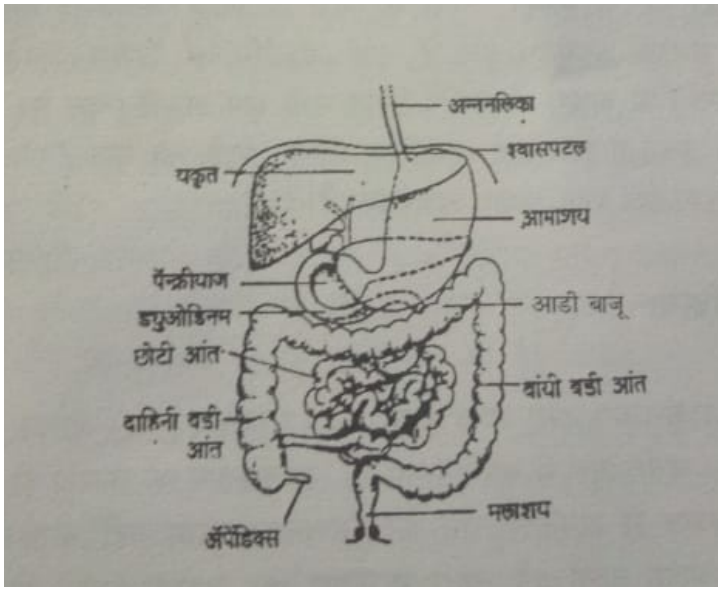

(आ.क्र.5, पाचन तंत्र के अंग)

पाचन क्रिया : लालास्त्राव के कारण शर्कराजन्य और शाक तत्वों जिसे कार्बोहाइड्रेट्स कहा जाता है उसका पाचन अन्न पदार्थो को चबावते समय मुंह में ही हो जाता है । आमाशय में मांस तत्व का पाचन शुरू होता है । मांसतत्व का पाचन ग्रहणों और छोटी आंत में पित्त और अन्नाशय रस से पूर्ण होता है । चरबी और मेद का भी इसी प्रकार से पाचन होता है । पाचन क्रिया पूर्ण होने के बाद आहार के द्रव्यों को आगे धकेला जाता है । पाचन किये हुए आहार में से पाचित किये गये और शरीर के लिए जरूरी पदार्थो का शोषण होता है । प्रवाही छोटी आंत से शोषित होता है और लवणादि रासायनिक पदार्थो का भी शोषण होता है । प्रवाही का शोषण बड़ी आंत में पूर्ण होता है । आहार तत्व प्रथम यकृत में जाता है । वह कई तत्व परिवर्तित किये जाते हैं और वहां रखे जाते हैं और कुछ तत्व खून में मिल जाते हैं । मल बड़ी आंत और बाद में मलाशय में इकट्ठा होता है । योगासन करते समय कई आसनों में हमारे पाचन अंगों पर दबाव और तनाव होता है इसके कारण हमारा ध्यान अंदर की तरफ हो जाता है और योगासन के अभ्यास में यह जरूरी भी है । मानव शरीर में पाचन तंत्र द्वारा पोषकतत्व शरीर को मिलते है

जिस के कारण शरीर स्वस्थ रहता है जो योग और नृत्य में महत्वपूर्ण व उपयोगी साबित होता है ।

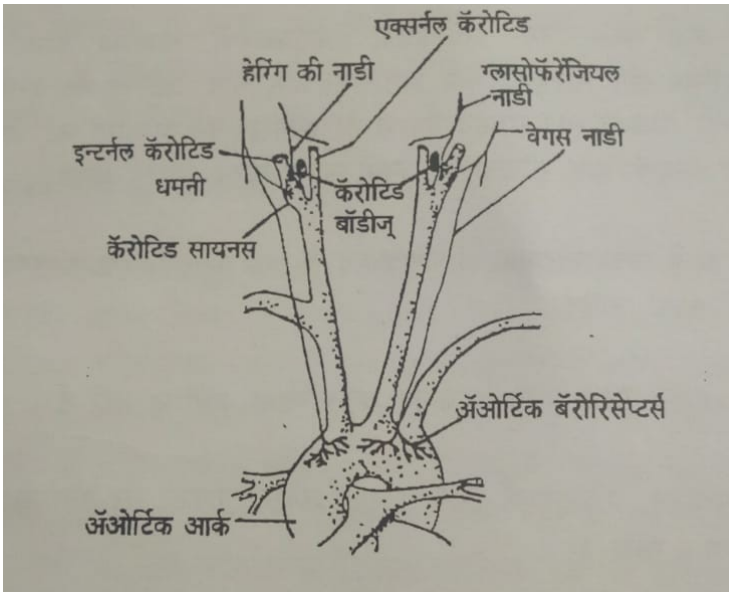

3.4.2 रक्त परिभ्रमण तंत्र :

रक्त परिभ्रमण तंत्र का मुख्य कार्य शरीर की सभी पेशीयों को प्राणवायु और पोषक आहार तत्व प्रदान करके कार्बनडाईऑक्साइड जिसे कर्बद्वि प्राणिद् वायु कहा जाता है और अन्य प्रकार के त्याज्य द्रव्यों को लेकर उन्हें हृदय के माध्यम से फेंफड़ों और वृक्कों की तरफ भेजना होता है । यह प्रणाली शरीर में होने वाले अंतःस्त्रावी ग्रंथियों का स्त्राव का वहन करती है । शरीर में पानी का प्रमाण योग्य रखती है । शरीर का तापमान सही रखना तथा विषाणु या जीवाणुओं को नष्ट करना और शरीर को बचाये रखने का कार्य यह प्रणाली द्वारा होता है । रक्त परिभ्रमण तंत्र की प्रणाली के अंगो में हृदय, धमनियाँ और सिराएँ और रक्त का समावेश होता है । वैसे तो इस प्रणाली का संबंध सभी तंत्रों के साथ होता है लेकिन विशेषतः श्वसन और उत्सर्जन तंत्र से मुख्य है । रक्तवाहिनियाँ हृदय से रक्त को शरीर में हर जगह ले जाने का कार्य करती है और उनकी शाखाओं को धमनियाँ कहा जाता है । जो रक्त शरीर के हर कोने से वापस आता है और रक्त जिस रक्त वाहनियों से और शाखाओं से वापस आता है उन शाखाओं और रक्त वाहनियों को सिराएँ कहा जाता है । रक्तवाहनियों का जाल हर जगह फैला होता है । इनकी कोशिकाएँ सूई की नोंक जितनी जगह में भी व्याप्त होती है । सिराओं पर स्नायु पेशीयों का दबाव रहता है । जिसके कारण दूषित रक्त हृदय की ओर पहुँच सकें ।

हृदय का स्थान हमारे शरीर में दोनों फेफड़ों के बीच में थोड़ा बांयी ओर होता है । हृदय की रचना विशिष्ट पेशी समूह से होती है । हृदय 1 मिनिट में 70 से 80 बार धड़कता है जिसमें हृदय संकोचन, प्रसार तथा विश्राम लेता है । पूरे शरीर से आया हुआ अशुद्ध रक्त जो कार्वद्विप्राणिद् युक्त होता है । वह रक्त फेफड़ो की तरफ भेजना और वहाँ से वापस आया हुआ शुद्ध रक्त पूरे शरीर में भेजना यह महत्वपूर्ण कार्य जो पंपींग जैसा कार्य है । यह कार्य हृदय हरदम करता रहता है । शरीर में लगभग 4 लीटर रक्त होता है । रक्त का 45 प्रतिशत भाग कणों से और 55 प्रतिशत भाग रस का बना होता है । रक्त के कणों के तीन प्रकार है जिसमें पहला लाल रक्त जिसमें प्राथनयुक्त लोह जिसे हीमोग्लोबिन कहते हैं वह होता है । हिमोग्लोबिन वाले रक्त प्राणवायु के साथ तुरंत संयुक्त हो जाता है । इसी कारण इसका रंग लाल होता है । दूसरा है श्वेत रक्तकण जो विषाणु और जीवाणुओं को नष्ट करता है और शरीर को रोगों से बचाता है । रोगप्रतिकारक शक्ति को बनाए रखने का कार्य श्वेत कणों का है । हमारे शरीर में रक्तदाब जिसे रक्तभार भी कहते हैं इसका प्रभाव बहुत ही महत्वपूर्ण है । यदि हमारा शरीर क्रियाशील है तो चलते–दौड़ते समय रक्त भार अधिक हो जाता है । उसके विपरीत जब हमारा शरीर नींद में हो तो रक्तभार कम रहता है । रक्तभार पर प्रभाव आयु, लिंग, समय, शारीरिक स्थिति, व्यायाम, मानसिक स्थिति तथा भावनाएँ, चपापचन क्रिया द्वारा पड़ता है ।

रक्तभार में हृदय के संकोचन काल द्वारा हृदय से जो रक्त जोर से बाहर धमनियों की तरफ भेजा जाता है और उस समय जो रक्त वाहिनियों की दीवार पर रक्त का दबाव पड़ता है उसे रक्त भार कहा जाता है । युवावस्था में हृदय संकोचन के समय में जिसे सिस्टोलिक कहते हैं वह रक्तभार पादर स्तंभ के हिसाब से 120 मि.मि. के आसपास रहता है और हृदय के प्रसार समय में जिसे डायास्टोलिक कहते हैं । उसमें रक्तभार 80 मि.मि. पादर स्तंभ के बराबर रहता है । हमारे शरीर में गर्दन के बांयी और दांयी तरफ करीटिड धमनियाँ होती है । उस पर पड़ने वाले दबाव से वहाँ दाब संवेदना ग्राहक उत्तेजित होकर मेडयूला ऑब्लोगाटा के हृदय केन्द्र को सूचना देती है और उसके कारण रक्तभार कम या ज्यादा होता है । इसके कारण अगर हम शांत बैठे हों या लेटे हों तभी भी रक्त भार 180/110 या 200/110 मि.मि. रहता है जिसे हायपरटेन्शन कहते हैं । तनाव, मोटापा इन कारणों से भी हायपरटेन्शन होता है । दवाईयाँ लेने से इसमें राहत तो होती है मगर उसके कारण हमारे शरीर में कई सारे दुष्परिणाम हो सकते हैं

। नृत्य या आसन करते समय हृदय की गति नियंत्रित होनी चाहिए । अगर वह बढ जाए तो ठीक नहीं है ।

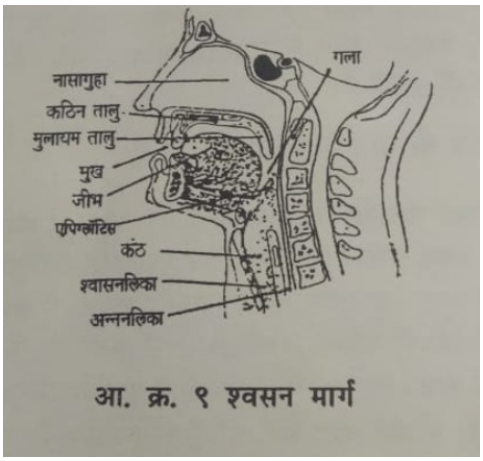

आ. क्र. ९ श्वसन मार्ग

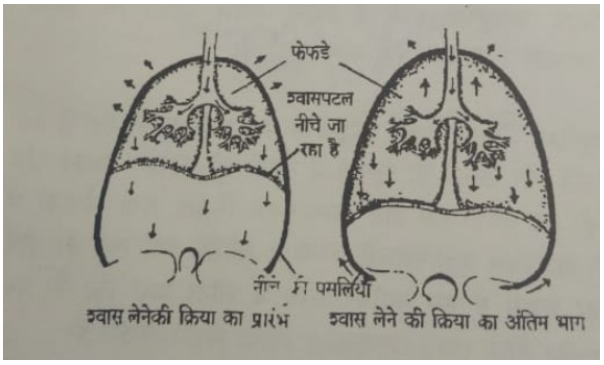

3.4.3 श्वसन तंत्र :

प्राणवायु हमारे शरीर के एक पेशी के लिये जरूरी है । प्राणवायु शरीर के अंदर जाकर जब बाहर आता है तब वह कार्बनडाई ऑक्साईड वायु बनकर बाहर आता है और उस वायु को शरीर के बाहर फेंकना जरूरी भी है और यही कार्य श्वसन तंत्र रक्त परिभ्रमण तंत्र के साथ मिलकर करता है । श्वसनतंत्र द्वारा हमारे शरीर में पंचप्राण रहते है । इसके अलावा श्वसनतंत्र शरीर में पानी की सही मात्रा को रखने में, शरीर का तापमान बराबर रखना, हवा के साथ बाहरी वातावरण से हमारे शरीर के अन्दर आने वाले जीवाणु–विषाणुओं को कफ द्वारा पकड़कर शरीर के अंदर नहीं जाने देने का कार्य श्वसन तंत्र द्वारा होता है ।

श्वसन तंत्र के अंग और रचना : श्वसन तंत्र के अंगो में नाक, नासागुहा, ग्रसनी, कंठ, श्वास नलिका, फेफड़े, उरी गुहा और श्वास पटल है । यह सारे अंग श्वसन प्रणाली का कार्य करते हैं । बायीं–दाहिनी नासिका से नाक बनती है । नासागुहा नासिका जहाँ मस्तिष्क के नीचे मिलती है वहां से शुरू होती है । नसागुहा से जाने वाला मार्ग गले में समाप्त होता है । ग्रसनी और उसके बाद कंठ प्रदेश में होता है । एपिग्लोटिस नाम के अंग द्वारा श्वसन नलिका का मार्ग बंद होता है और वह कंठ के द्वार पर होता है । इसी कारण भोजन खाते समय आहार पदार्थ हवा के साथ श्वास नलिका में प्रवेश नहीं कर पाता । जब निगल ने की क्रिया होती है तब श्वास बंद होता है और जब श्वास लेते है तब निगलने की क्रिया बंद हो जाती है । छाती में श्वास नलिका का प्रवेश होते ही वह दो भागों में विभाजित हो जाती है । फुप्फुस के दो खंड बांयी तरफ की श्वास नाड़ी को जिसे प्रणालिका भी कहते हैं उससे जुड़े रहते हैं । श्वास प्रणालिका से दाहिनी तरफ के फुप्फुस के तीन खंड जुड़े रहते हैं । कई शाखाओं में विभाजित होते हुए श्वसन प्रणालीकाओं की अन्तिम शाखा कई सारी अनगिनत वायु कोषों में फैल जाती है । यह वायुकोश बड़ी ही सूक्ष्म आकार के होते हैं और यह अंगूर के गूच्छे जैसे दिखते हैं जिसे अंलविओलाय कहते हैं । इसकी भितिकायें पतली होती है और इसके साथ रोहिणी या शिराओं की कोशिकायें लगी होती है । ये भितिकायें बहुत पतली होती है और इसमें से प्राणवायु और कार्बनडाईऑक्साइड दोनों वायु अंदर और बाहर आ जा सकते हैं । वायुकोष और रक्त के बीच यह होता है ।

फेफड़े कई सारे वायुकोश, स्नायुपेशियां, केशवाहिनीयों के जंजाल और नाड़ी तंत्र के तंतु से मिलकर बनते हैं । फेफड़े स्पंज जैसे दिखते हैं । वहीं फेफड़ों के बीच में हृदय होता है । दो स्तर का आवरण स्तर फेफड़ों पर होता है । उपर का स्तर छाती के पास पिंजरे जैसे आकार के अभ्यांतर दिवार पर चिपका रहता है और अंदर का स्तर फुप्फुस के पृष्ठ पर लगा होता है । श्लेष्मा जो दोनों के बीच का अंश है जिससे फेफड़ों का फैलना और सुकुड़ना आसानी से होता है । छाती की पसलियों से उनके बीच और आसपास की स्नायुपेशियां तथा श्वसपटल से उरोगुहा बनती है । जिसके कारण फेफड़ों को सुरक्षा प्रदान होती है । उरोगुहा में स्नायु पेशियों में जिस तरह तान संवेगग्राहक होती है उसी तरह फेफड़ों में भी होती है । धमनी द्वारा अशुद्ध रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में पहुंचता है । प्राणवायु युक्त शुद्ध रक्त फुप्फनसी सिराओं से हृदय के बायें आलिंद में जाता है ।

श्वसन कार्य : हमारे शरीर में दो प्रकार की श्वसन क्रियाएँ निरंतर चलती रहती है जैसे आंतर श्वसन जिसे इन्टरनल रेस्पिरेशन कहते हैं और बाह्य श्वसन जिसे एक्सटरनल रेसिपरेशन कहते हैं । अलग–अलग पेशियां या कोषाणु जिसे सेल्स कहते हैं और सूक्ष्म रक्त कोशिकाओं के बीच में आंतर श्वसन होता रहता है । प्राणवायु की खपत में कोषाणु में ऊर्जा, पानी व कार्बनडाईऑक्साइड वायु (CO_2) उत्पन्न होता है । शुद्ध रक्त कोशिकाएँ कोषाणु के पास लाती है जिसमें से प्राणवायु को ग्रहण करके कार्बन द्वि प्राणिद वायु वापस दिया जाता है और यह रक्त हृदय की और आता है । हृदय की तरफ आने वाला अशुद्ध रक्त फेफड़ों में जाता है । फेफड़ों में जो श्वसन क्रिया होती है उसे बाह्य श्वसन कहते हैं । श्वास लेने के समय छाती फूलती है और श्वास पटल नीचे की तरफ क्रिा करता है जिसके कारण उरोगुहा के आकारमान जो खोखला होता है वह बढ जाता है और फेफड़ों में ऋणात्मक दाब (नेगेटिव प्रेशर) होता है । वायु कोषों में जाती है और इस वायु में 20 प्रतिशत प्राण वायु होता है । हृदय के हर संकोचन के साथ फेफड़ों में अशुद्ध रक्त आता है । हिमोग्लोबिन वायुकोषों में से प्राणवायु लेने का कार्य करता है और उसे ओकिसीहिमोग्लोबिन कहा जाता है और रक्त कोशिकाओं का कार्बनडाईऑक्साइड वायु वायुकोषों में छोड़ा जाता है । इसके बाद शुद्ध रक्त हृदय की ओर जाता है वहाँ से पहुँचता है ।

मनुष्य का शरीर एक मिनिट में 14 से 20 बार श्वास लेता और छोड़ता है । श्वास लेते समय 500 मि.लि. हवा फेफड़ों में भरी जाती है । मनुष्य अपने फेफड़ों में 1 मिनिट में 7 से 8 लीटर हवा लेता है । दिर्घ श्वसन में 4 लीटर हवा ली जा सकती है यानि 10–20 दिर्घ श्वसन 1 मिनिट में होता है ।

श्वास प्रणाली का योगदान प्राणवायु प्रदान करने के उपरांत नाड़ीतंत्र को जागृत, सजाग, ध्यान या लक्ष्य से संबंधित भी है । प्राणायाम में इच्छा से किए जाने वाली श्वसन क्रिया और मन का संबंध जुड़ा है । श्वसन तंत्र प्राण और मन दोनों से जुड़ा है । श्वसन क्रिया हमारे आध्यात्मिक मार्ग की सीढ़ी मानी जाती है ।

3.4.4 स्नायु पेशी तंत्र :

स्नायु पेशी द्वारा शरीर का हलन–चलन शरीर की स्थिति बदलना जैसे की उठना, बैठना, चलना और स्थिर रहना, शारीरिक कार्य करने के लिए शक्ति प्रदान करना यह कार्य इसका है । रूधिराभिसरण, अन्नपचन, उत्सर्जन, श्वसन, प्रजनन यह सारे कार्य में स्नायु पेशियों का महत्वपूर्ण भाग है । मनुष्य के शरीर को आकार, मजबूती और संरक्षण देने का काम स्नायु पेशीयाँ करती है। शरीर की मांस धातु इसीसे बनती है। स्नायु पेशी की रचना अनेक लम्बे–लम्बे तंतुओं के समूह द्वारा बनती है । इनमें सिकुड़ने की क्षमता होती है जो नाड़ी सूत्रों की उत्तेजना से होती है । इसी कारण इन पेशी सूत्रों में संकोचनशीलता होती है । इन संकोचन के कारण ही पेशियां स्थिर होने के बावजूद अंगों में हलन–चलन होता है । हल्का सा आवरण पेशियों में होता है । पेशी के अपनी रचना और कार्यपद्धति के अनुसार दो प्रकार है। पहला है ऐच्छिक स्नायुपेशी जिसे परतंत्र पेशी कहा जाता है । जो बड़े मस्तिष्क के द्वारा कार्य करती है और दूसरी अनैच्छिक स्नायु पेशी जिसे स्वतंत्र पेशी कहा जाता है जो इच्छा के अनुसार अपनी क्रिया नहीं कर सकती। एच्छिक पेशियाँ जो परतंत्र पेशियां शरीर में हड्डियों से जुड़ी होती है जिसे अस्थि पेशियां कहा जाता है । जिसमें गर्दन, छाती की पेशियां, हाथ–पांव है । इनसे ही शरीर को आकार, वनज और रचना मिलती है । स्नायु पेशी हड्डी के साथ जुड़ने के कारण वह मजबूत और कठिन होती है जिसे स्नायुबंध कहते हैं । इन स्नायु पेशीयों को इच्छा अनुसार कार्य करवा सकते हैं । स्नायु पेशियों का संकोचन जब होता है तब उसकी लंबाई कम होती है और मोटाई बढती है । जब शरीर सामने की तरफ झुकता है तो उस क्रिया में जो पेशीयां कार्य करती है उसे उन स्नायुपेशियों को संकोचन पेशी यानि की क्लेकझर्स कहते हैं और शरीर के पीछे की ओर झुकाने वाली स्नायु पेशी को विस्तारक पेशी यानि एक्टेसर्स कहा जाता है । श्वास पटल को भी अर्ध ऐच्छिक पेशी कहा जाता है । रेक्टस अेब्डोमिनिस जो पेट के सामने के भाग में दो लंबी मांस पेशियां होती है जो मध्य रेखा के दायें और बायें दिखाई पड़ती है । उससे पेट के अलग–अलग अंगो को आधार मिलता है । जिससे सभी अंग अपने स्थान पर ही रहते हैं और एक जगह इकट्ठा नहीं होते ।

अनैच्छिक पेशियाँ जो स्नायु पेशी हमारी इच्छा के अनुसार कार्य नहीं करती इसी कारण इसे स्वतंत्र पेशियाँ कहा गया है । इस स्नायुपेशी का नियंत्रण स्वायत्त नाड़ी तंत्र यानि के ऑटोनामिक नव्हर्स सिस्टम द्वारा होता है । जैसे की पेट में जो अंग होते हैं उनसे सभी में यह स्वतंत्र पेशियाँ होती है जिसका संकोचन बहुत ताकत से और धीरे–धीरे होता है । इसके

अलावा मूत्र का संकोचन, गर्भाशय का संकोचन आदि । इन अंगों के संकोचन में कम शक्ति लगती है । इन अंगों के क्रिया और विश्राम के समय नियमित होता है । इन पर विद्युत उत्तेजना से कम और यांत्रिक या रासायनिक उत्तेजना से ज्यादा प्रभाव होता है । जैसे कि छोटी या बड़ी आंत की दीवारों में आहार द्रव्यों से दबाव उत्पन्न होता है और वह उत्तेजित होकर संकुचित होता है । इस संकोचन को प्रत्यावर्तित कहा जाता है । स्नायु पेशी का संकोचन स्वाभाविक तरीके से सामान्य स्थिति में भी संकोचन करती है और उसी संकोचन को पेशीतान यानि मसल टोन कहते हैं । जब दो हड्डीयों के बीच खींचाव होता है तब पेशी का खींचाव होता है । यह खींचाव बार–बार होता रहे तो पेशी संकोच को कायम रखना संभव होता है । इस पेशी पर छोटे मस्तिष्क का नियंत्रण रहता है । इस नियंत्रण के कारण शारीरिक स्थिति, पाचन संस्थ के अलग–अलग अंगों का कार्य, हलचल और रूधिराभिसरण के कार्य अच्छी तरी से होते हैं । इन पेशीयों के संकोचन पर भावनाओं का प्रभाव होता है और इसी कारण या तो संकोच ज्यादा या कम होता है । मनुष्य जब नींद में होता है तब स्वाभाविक संकोच कम रहता है । मनुष्य में कई बार स्वाभाविक संकोच तीव्र मात्रा में मिलता है जिसके कारण जोड़ों का लचीलापन कम हो जाता है और कड़कपन यानि की स्टीकनेस बढ़ जाती है । इस वजह से व्यक्ति के स्वभाव में परिवर्तन आने लगता है जैसे कि चिड़चिड़ापन, गुस्सा, आम्लता और अस्वस्थता जैसे विकार होने लगते हैं । इस प्रकार की मानसिक अवस्था को हायपरटोनिक कंडीशन कहते हैं । इससे बिल्कुल अलग लोगों भी संकोच जरूरत कम मात्रा में होता है और ऐसे लोगों में अति लचीलापन और मोटापा पाया जाता है । इस प्रकार के व्यक्ति में डर, लज्जा, कमजोरी इसके प्रभाव से नहीं होती । व्यक्ति में कंपकंपाहट, निम्न रक्तदाब, आत्मविश्वास कम होना, आलस्य, अति निद्रा जैसे लक्षण दिखने लगते हैं । कुपोषण में भी संकोच अल्प होता है । इस अवस्था को हायपोटोनिक कंडीशन कहते हैं । पेशियों के अधिक परिश्रम के कारण वह थक जाती है जिसके कारण व्यक्ति चाहे तो भी उसकी पेशियां काम नहीं कर पाती और वह कार्य करना बंद कर देती है । इस अवस्था को परिश्रम या थकान यानि के मसल कटींग कहा जाता है । पेशियों को अधिक श्रम देने में उसमें थकान के कारण उत्तेजनीयता और संकोचनशीलता के गुण कम हो जाते हैं । पेशियों के थकान का कारण भी कुछ इस प्रकार है जिसमें प्राण वायु और रक्तशर्करा की कमी, क्षमता से ज्यादा कार्य करना, लेक्टिक एसिड की मात्रा जोड़ों में बढ़ना है । इन सभी के कारण हमें कार्य करने का समय और शक्ति का व्यय और कार्य का स्वरूप का ध्यान रखना जरूरी है क्योंकि पेशियों का कार्य प्रारंभ होते ही श्वसन, नाड़ी तंत्र और रूधिराभिसरण का कार्य पेशी कार्य के साथ–साथ बदलता रहता है। पेशियां और नाड़ी तंत्र

और मस्तिष्क में सामंजस्य यानि की कोऑर्डिनेशन होता है । जिसके कारण भावनाओं का जो परिणाम स्वाभाविक संकोच पर होता है उसका स्तर सुधरेगा और मनोशारीरिक क्रियाएँ अच्छी तरह से होगी जो योग की दृष्टि से और नृत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण व उपयोगी साबित होता है ।

3.4.5 नाड़ी तंत्र (मज्जा तंत्र) :

नाड़ी तंत्र का उद्देश्य पूरे शरीर की अलग–अलग प्रक्रियाएँ जैसे कि हलन–चलन, स्थिर स्थिति आदि को सहयोग और समन्वय से नियंत्रित करना है । नाड़ी तंत्र का कार्य सभी तंत्रों का अलग–अलग नियंत्रण करना सुसूत्रता लाना, शरीर की अखंडता कायम रखना, किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति में शरीर का संरक्षण करना और शरीर को बाह्य वातावरण के अनुकूल करना, शरीर को विश्राम, नींद और जागृत अवस्था में रखना है । नाड़ी तंत्र की रचना नाड़ीकोषाणु जिसे नव्हर्स टिश्यू कहते हैं और उसमें से निकले तंतुओं से होती है । नाड़ी तंत्र के रचना और कार्य की दृष्टि से तीन विभाग है । ऐच्छिक या केन्द्रिय नाड़ी तंत्र (सेंट्रल नर्व्हस सिस्टम), अनैच्छिक अथवा स्वायत्त नाडी तंत्र (ओटोनोमिक नर्व्हस सिस्टम), प्रान्तीय नाड़ी तंत्र (पेरिफेरल नर्व्हस सिस्टम)

ऐच्छिक नाड़ी तंत्र : मस्तिष्क और नाड़ी रज्जु या सुषुम्ना ऐच्छिक नाड़ी तंत्र में आते हैं । यह दो अंग दो पदार्थ सफेद पदार्थ और धूसर पदार्थ से बना होता है । धूसर पदार्थ से मस्तिष्क का उपरी भाग बनता है और सफेद पदार्थ से अंदर के भाग में होता है । सफेद पदार्थ नाड़ी सूत्रों से और धूसर पदार्थ नाड़ी कोषाणुओं से बनता है । नाड़ीयाँ असंख्य नाड़ी सूत्रों से बनती है और उस पर संरक्षक आवरण होता है । संरक्षण आवरण से उत्तेजना या संवेदक लहर यहाँ–वहाँ नहीं जा सकती । हमारे शरीर में नाड़ी रज्जू से निकलने वाली नाड़ीयां उसकी कई सारी शाखाओं में और सूक्ष्म शाखाओं में विभाजित होकर पूरे शरीर में फैली हुई होती है । हमारे शरीर में सुई के अग्र जितनी भी जगह खाली नहीं है । हर जगह नाड़ी तंतु है । प्रान्तीय नाड़ी संस्थान इन्हीं नाड़ीयों से बनता हो । मस्तिष्क को उपर की तरफ से देखने पर हमें दो गोलार्द्ध दिखते हैं जो मस्तिष्क सेतु यानि कोपर्स क्लोझम से परस्पर जुड़े होते हैं । धूसर पदार्थ

से मस्तिष्क का ऊपरी स्तर बनता है । जिससे हम जागृत अवस्था में रहते हैं । आज्ञा देने वाला केन्द्र मस्तिष्क के सामने वाले हिस्से में होता है जिसे आज्ञा क्षेत्र यानि मोटर एरिया कहते हैं । इस क्षेत्र में ऐच्छिक संवेगों का प्रारंभ होता है । संज्ञा क्षेत्र यानि सेंसरी एरिया मस्तिष्क के पीछे के हिस्से में होता है जहाँ स्पर्श शब्द, गंध, रूप, रस की संज्ञा होती है । करीटीय नाड़िया जिसे केनियल नर्व्हज कहते हैं । जिसकी संख्या 12 है यह नाड़ी मस्तिष्क के निचले हिस्से से निकलती है । करोटीय नाडियां परानुकंपी स्वायत्त नाड़ी तंत्र का भाग है । चहेरा, कान, नाक, फेफड़े, हृदय, पाचन तंत्र, श्वासपटल इन अंगों के लिए काम करती है । मस्तिष्क के मध्य भाग में नीचे की तरफ आज्ञाकंद (थेलेमस) नाम का भाग होता है जिससे हमें वेदना दबाव और तापमान की अनुभूति होती है । सभी संवेदनाएँ जो मस्तिष्क की तरफ ऊपर आती है वह थेलमस से होकर ही आगे बढती है । थेलेमस के नीचे हायपोथेलमस का क्षेत्र होता है जिसका कार्य अनैच्छिक नाड़ी संस्थान का नियंत्रण करना, भावनिक विश्व का नियंत्रण करना, अंतःस्त्राव ग्रन्थियों का नियंत्रण करना है । बड़े मस्तिष्क के नीचे की ओर लघु मस्तिष्क सिर के पिछले हिस्से में होता है । शरीर का संतुलन लघु मस्तिष्क द्वारा होता है । लघु मस्तिष्क के तीन पिंड या भाग है । हलन–चलन, स्थिति बदलना, चलना यह सारे स्वाभाविक और सहजता से होने वाले कार्य जिससे संतुलन रखना जरूरी है यह कार्य लघु मस्तिष्क करता है । पेशियों का संकोच बनाए रखना और कार्य करते समय स्थिर और दृढ़ रखने का कार्य लघु मस्तिष्क करता है । नाड़ी रज्जु या सुषुम्ना कांड के पहले नाड़ी पिंड का भाग होता है । जिसका नियंत्रण निगलना, खांसी, वमन, श्वास, प्रश्वास, जागृति, हृदयस्पंदन, निद्रा इन कार्यो में होता है । बड़े मस्तिष्क के धूसर स्तर का प्रभाव भी इस पर होता है । सुषुम्नाकांड की लम्बाई ग्रीवा से कटी तक लगभग 16–18 इंच तक होती है जो रीढ़ की नलिका में स्थिर होती है । इन नलिका में धूसर पदार्थ अंदर और श्वेत पदार्थ जो नाड़ी सूत्रों का भाग है वह बाहर की ओर रहता है । 31 जोड़िया सुषुम्निक नाड़ियों की सुषुम्ना के पश्चिम भाग से और अग्रिम भाग से निकलती है जो हाथ–पैर, पीठ जैसे भागों में बिखर जाती है । सफेद पदार्थ का कार्य संज्ञा तथा आज्ञा के संवेगों को नीचे–ऊपर संवहन करना है और धूसर पदार्थ द्वारा प्रत्यावर्तित क्रिया का सम्पादन और कार्य होता है ।

अनैच्छिक नाड़ी तंत्र : अनैच्छिक नाड़ी तंत्र विभाग का नियंत्रण पाचन तंत्र की पेशियां, हृदयपेशी, अंतःस्त्रावी ग्रंथियां, मूत्राशय, तरह–तरह की ग्रंथिया आदि अंगों पर होता है । अपनी इच्छा इस कार्य प्रणाली पर काम नहीं करती । यह अपना स्वतंत्र नियंत्रण करती है जिसके कारण इसे स्वायत्त नाड़ी तंत्र यानि की आटोनोमिक नर्व्हस सिस्टम कहते हैं । अनुकंपी यानि सिम्पेथेटिक और परानुकंपी यानि पेरेसिम्पेथेटिक नाम के दो विभाग किये जाते हैं जो अभ्यास करने के हेतु से है क्योंकि उनकी क्रियाएँ बहुत अंशो में विरोधी है। मेरूदंड के दाएं–बायें तरफ अनुकंपी स्वायत्त नाड़ी तंत्र में नाड़ीगंद जिसे र्गगलिया कहते हैं । उसकी दो जंजीरें गर्दन, छाती और कमर के हिस्से में रहती है । नाड़ी तंत्र हंमेशा शरीर को उत्तेजित रखता है । इसके प्रभाव से हृदय गति, बढ़ना, आंखों की पुतलियों का विस्तार होना । पसीना आना, पेट में स्थित सूक्ष्म रक्तवाहिनियों का संकोचन होना, त्वचा के नीचे भी संकोचन होना, हृदय के केशवाहिनियों और श्वासनाड़ी का विस्तार, रक्तभार बढ़ना, रक्त शर्करा की मात्रा कोई अवस्था जैसे आपातकाल में बढ़ना, भूख कम होना, श्वास की गति बढ़ना, मलाशय का अवरोध होना, एड्रिनलिन संप्रेरक ज्यादा मात्रा में रक्त में यह सारे कार्य होते हैं । कष्ट, क्रोध, चिंता, व्यायाम, लैंगिक उत्तेजना, डर, भावनिक क्षोभ इन सबसे अनुकंपी तंत्री उत्तेजित होता है ।

परानुकंपी स्वायत नाड़ी तंत्र इसके विरूद्ध प्रकार का कार्य करती है । जैसे की भूख बढ़ाना, हृदय गति कम करना, आंखों की पुतलियों का आकार कम करना, लाकारस का प्रमाण बढाना यह कार्य करता है । उत्तेजनायुक्त कार्यो के बाद शरीर को विश्राम स्थिति में लाया जाता है । परानुकंपी स्वायत्त नाड़ी तंत्र से ही व्यायाम और अन्य उत्तेजना युक्त कार्यो के बाद शरीर को विश्राम स्थिति में लाया जाता है । परानुकंपी स्वायत्त नाड़ी (शाखा) तृतीय, सातवीं, नौंवी और दसवीं करोटीय नाड़ियों की जोड़ियाँ और कटिप्रदेशीय सुषुम्ना के नाडीगण्ड मिलकर बनता है । अनुकंपी और परानुकंपी नाड़ी तंत्री का एक–दूसरे पर सामंजस्य, समन्वय और समतोल होने से हमारे शरीर की वह क्रियाएँ जिस पर हमें ध्यान देने की जरूरत नहीं होती और वह सरलता से चलती रहती है । इनका समतोल प्यार, नैराश्य, द्वेष, क्षोभ, चिंता, गुस्सा इन सभी भावनाओं के अधिक होने से बिगड़ता है । अनुकंपी नाड़ी ज्यादा कार्य करती है जिसके कारण रक्त दाब बढ़ता है, आम्लता बढ़ती है आदि विकार उत्पन्न होते हैं ।

आसन और प्राणायाम जैसी योग की क्रियाओं तथा नृत्य करते समय नाड़ी तंत्र पर प्रभाव होता है। शरीर में नाभि और उसके आसपास के प्रदेश और कटिप्रदेश तथा सुषुम्ना के आखरी हिस्से पर भी होता है । उस जगह रक्तसंचार की मात्रा बढ़ती है जिसके कारण नाड़ी तंत्र की शाखाएँ और संज्ञाग्राहक सशक्त होते हैं और उत्तेजित होते हैं । संज्ञाग्राहक से आने वाले संवेगों के कारण नाड़ी केन्द्रो को नयी प्रेरण मिलती है और वह इनको समझने लगते हैं ।

3.4.6. जागृतावस्था और निद्रा :

जागृत अवस्था में सोच–विचार, हलन–चलन प्रत्युत्तर आदि क्रियाएँ चलना, बोलना जैसी ऐच्छिक क्रियाएँ होती है । मस्तिष्क को जागृत रखने में हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य उत्तेजनाओं को जो ताप, शीत, पीडा, स्पर्श और शब्द ग्रहण करता है । कुछ संज्ञा ग्राहक आशयों में उत्पन्न होती है वह संज्ञाओं को ग्रहण करके सुषुम्ना में भेजी जाती है और कुछ संज्ञा वेगों के कारण प्रत्यावर्तित क्रिया होती है । इन संज्ञावेग के कारण मस्तिष्क में हर पल बाह्य वातावरण से और शरीर के अंतरंग में खबर या सूचना मिलतीरहती है । इसी के कारण मस्तिष्क जागृत अवस्था में रहता है । एक दिन में 24 घंटे होते हैं उनमें से हम 15 से 18 घंटे जागृत अवस्था में रहते हैं । निद्रा का सम्बन्ध दो वस्तुओं के साथ जुड़ा है । जिसमें पहला है विश्व के प्रकाश और अन्धकार चक्र और दूसरा शरीर के श्रम परिहारात्मक धर्म । कर्मो से शक्ति का खर्च जागृतकाल में होता है । नाड़ी संस्थान का काम कुछ ऐसे रासायनिक तत्व उत्पन्न और संचित होते हैं जिसके प्रभाव से कमजोर हो जाता है और थक जाता है । नाड़ी केन्द्रों तक पहुँचने वाली उत्तेजनाएँ कम होकर समाप्त होती है । विचार कम होते हैं और नाड़ी संस्थान निद्रा अवस्था में पहुँच जाता है । हमारा शरीर रोज एक ही समय की आदत, शांतता, प्रकाश की कमी और आंखों का बंद होना इन सभी से नींद आ जाती है । सुषुम्ना की तरफ से प्रत्यावर्तित क्रिया जैसे की तीव्र प्रकाश, पीड़ा, स्पर्श, घड़ी का अलार्म आदि से मस्तिष्क फिर से जागृत अवस्था में आ जाता है । शब्द संज्ञा का ग्रहण हम जागते समय सर्वप्रथम ग्रहण करते हैं । बालक को 10 घंटे और बड़ो के 6 से 7 घंटे की नींद पर्याप्त होती है । हमारा शरीर निद्रा अवस्था में शक्ति की पूर्ति करता है जिसके कारण हम फिर से तरोताजा होते हैं। व्यायाम और

खेलकूद करने से भी इन पर असर होता है लेकिन अधिकतर शारीरिक बल, कौशल्य या कोई एक अंग का विशेष विकास करने हेतु यह किया जाता है । योगाभ्यास और नृत्य का उद्देश्य ग्रन्थि तथा शरीर के अन्य सभी कार्यो में समत्व का निर्माण करना है । इसी कारण योग और नृत्य के अभ्यास को व्यायाम की तरह नहीं करना चाहिए ।

3.4.7 अस्थि तंत्र और शारीरिक स्थिति :

हमारा कंकाल विभिन्न प्रकार की अस्थियां और अनेक प्रकार के जोड़ से बना होता है । कंकाल के कारण ही शरीर का कद, आकार और वनज निश्चित होता है । कंकाल के कारण ही हमारे शरीर की विभिन्न पेशियां, मृदु अंग जैसे कि सुषम्ना, हृदय, फेफडे, मस्तिष्क सुरक्षित रहते हैं । अस्थि तंत्र का मूलतः उद्देश्य मांस पेशियों को आधार देना । शरीर को हीलाना, शारीरिक स्थिति को प्राप्त करना है । अस्थियों के कारण ही हमारा शरीर हलचल करता है । हलचल के समय वैसे तो हड्डियां निष्क्रिय रहती है लेकिन पेशियों के संकोचन व प्रसरण के कारण अस्थियां हिलती है । पेशियों को ठोस आधार अस्थियों द्वारा प्राप्त होता है । अस्थि के कारण हमारे चेहरे और शरीर की आकृति बनती है । हमारे शरीर में पाये जाने वाली अस्थियाँ कुल 206 है । अस्थियां ठोस, कठिन और मजबूत होती है और कुछ उससे विपरीत अस्थि के ऊपर का स्तर कठिन होता है और अंदर का सुषिर और बीच में नाड़ी यानि मेरो रहती है । रक्त और सूक्ष्म नाड़ियां अस्थि के कोशिकाओं को भी भेजी जाती है । हड्डियों के सिरे पर बोनमेरो में लाल रक्तकण बनते रहते हैं । अस्थियों में कैल्शियम, फोस्फेट, क्लोराइड और कार्बोनेट लवण मिलता है । पेशियां अस्थियों के साथ जुड़ी रहती है । उन्हें अस्थि पेशियां योनि स्केलेटल मसल्स कहा जाता है जिसके कारण हमारा शरीर हलचल कर सकता है ।

अस्थि के चार प्रकार है । चपटी अस्थि जिसे फ्लेट बोन कहते हैं जो फैली हुई होती है । जैसे की पसलियां । अनियमित आकार की अस्थि जिन्हें इरेग्युलर बोन कहा जाता है । जिसकी रचना ऊबड़–खाबड़ होती है । जैसे की मेरूदण्ड की कशेरूका । लम्बी अस्थि जिन्हें लोंग बोन्स कहते हैं । जिसमें हाथ,पैर की लम्बी अस्थियां शामिल है । छोटी अस्थि जिन्हें शोर्ट बोन्स कहते हैं । जिसमें अस्थियों के छोटे–छोटे टूकडे होते हैं । जैसे की हमारे हाथों की अंगुलियां और कलाई ।

संधि (ज्वाइंटस) : अस्थियों के दो सिरे एक–दूसरे से जिस जगह जुड़ते हैं और वह जगह पेशियों से आच्छादित होती है उसे संधि कहते हैं । हमारा शरीर संधियों के आधार से तीन प्रकारों में विभाजित किया है । फायब्रस संधि : फायब्रस संधि में दोनों अस्थियां मजबूती से एक–दूसरे के साथ जुड़ी हुई होती है । वह हलन–चलन नहीं करती है । काटीलेजिनस संधि : यह थोड़ी नरम होती है जो दो अस्थियों को जोड़ने का काम करती है । जैसे की रीढ़ की दो हड्डियों के बीच में जो चपटी डिस्क होती है । इसके कारण दो हड्डियों को एक–दूसरे का आधार मिलता है और धक्के सहन करने की क्षमता भी प्राप्त होती है । सायनोव्हियल संधि : इस संधि प्रकार में अस्थियां एक–दूसरे से ढीले तरीके से जुड़ी होती है जो एक ही दिशा में मूडती है । एसी संधि के जोड़ो में स्निग्ध पदार्थ होता है जिससे जोड़ सरलता से हिलता है । इसके छः उप प्रकार भी है । बोल अेड सोकेट ज्वाइंट इस प्रकार में एक अस्थि के सिरे पर गोलाकार गड्ढे में दूसरे अस्थि का बोल जैसा सिरा फंसता है । जैसे की कंधा और जंघाएँ । हिन्ज ज्वाइंट : इस प्रकार में संधि किसी एक दिशा में घूम सकती है । जैसे–घुटना, कुहनी । पिव्हीट ज्वाइंट : इस प्रकार की संधि में एक अस्थि के सिरे पर दूसरी अस्थिका गड्ढा या छिद्र होता है जिसके कारण ऊपर की अस्थि सरलता से 180 डिग्री तक घ ूम सकती है । जैसे–खोपड़ी के नीचे मेरूदंड की पहली दो कशेरूकाओं के बीच की संधि । सेंडल ज्वाइंट : अंगूठे की संधि । अंग्यूलर ज्वाइंट : इस ज्वाइंट में सिर्फ ऊपर–नीचे की ओर ही हलन–चलन होता है । जैसे की कलाई और टखना । ग्लायडिंग ज्वाइंट : यह ज्वाइंट कोलरबोन और पीठ में स्कर्यूला अस्थि में होती है जो उड़ते पंछी की तरह हिलती है ।

मेरूदण्ड (स्पाइन) : हमारे शरीर में रीढ़ होती है उसे मेरूदण्ड भी कहा जाता है । वह 33 कशेरूकाओं से बनता है । जब प्रौढावस्था आती है तब अन्त के 4 भाग जुड़ जाते हैं । जैसे की वह एक ही अंग हों । इसके पहले के 5 भाग भी एक दूसरे जे जुड़ते हैं और त्रिकास्थि (संक्रम) तैयार होती है जो एक अस्थि की तरह कार्य करता है । उसके ऊपर लंबर जिसे कमर कहते हैं उसकी 5 कशेरूका होती है जिसकी कशेरूकाएँ अधिक मोटी है और चौडी होती है । उनके ऊपर डॉर्सल यानि पीठ के 12 कशेरू और सबसे ऊपर गर्दन के भाग में 7 कशेरू यानि सर्वायकल व्हर्टेब्रा होते हैं । हर एक कशेरूकाओं के बीच में खोखली जगह जिसे कनेाल कहते हैं वह होती है । कशेरू मांसपेशियों से आच्छादित होती है और एक–दूसरे पर एक कतार में होती है जिसके कारण वह कशेरू की कर्नाल एक–दूसरे पर आने से रीढ़ के अंदर एक नलिका जैसा भाग तैयार होता है । जिसे कशेरूनलिका या व्हर्टेबल कर्नोल भी कहते हैं । इस नलिका

में मस्तिष्क से निकली हुई नाड़ी रज्जु या सुषुम्ना जिसे स्पाइनल कोर्ड भी कहते हैं वह सुरक्षित रहती है । पीठ के हिस्से की कशेरूकाओं के साथ पसलियां जुड़ती है । इस भाग के ऊपर के हिस्से में स्कंधवलय तथा कमर के नीचे त्रिकास्थि के पास कुटीर वलय जुड़ी हुई होती है । इन्हीं के साथ हाथ–पैरों की लम्बी अस्थि जुड़ी होती है । पुरूषों की अपेक्षा से स्त्रियों की कमर और नितंब इसी कारण चौड़े होते हैं जो प्रसुति के समय उपयोग होते हैं । दो कशेरूकाओं के मध्य में एक चपटा गोलाकार भाग जिसे डिस्क कहते हैं वह होता है और उसमें एक द्रव्य पदार्थ होता है । शरीर के असाधारण हलन–चलन या धक्का लगने से डिस्क अपनी जगह से हट जाए या धक्का लगने से डिस्क अपनी जगह से हट जाए तो बहुत पीड़ा होती है । इसीको स्लिप्ड डिस्क कहते हैं । मेरूदंड, अस्थि पेशियां और अस्थि यह तीन बंधन यानि की टेंडन से ढका हुआ और जुड़ा होता है । यही कारण से रीढ़ आगे–पीछे, बायें–दायें मुड़ सकती है और घ ूमती है । मेरूदंड में गर्दन, पीठ, कमर और नितंब यह चार स्वाभाविक मोड़ होते हैं और इसकी वक्रता कुदरती होती है । मेरूदंड का स्वस्थ होना स्वस्थता का लक्षण है ।

मानव शरीर में अस्थि तंत्र योग और नृत्य में महत्वपूर्ण व उपयोगी साबित होता है ।

इस अध्याय में मानवीय शरीर के अंग,उपांग और प्रत्यांग के योग और नृत्य में किस तरह आसन और नृत्य की मुद्रा समान है यह समझाने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है । मानवीय शरीर की रचना को दर्शाते हुए पेशी समूह, अवयव, मानवीय शरीर के विभिन्न तंत्र तथा शरीर को श्वसन तंत्र, अस्थि तंत्र और शारीरिक स्थिति आदि दर्शाने का प्रयास किया है तथा नृत्य करते समय इसका किस तरह कार्य हो सकता है वह भी बताने की कोशिश की गई है । जिससे यह जानकारी प्राप्त हो सकती है कि योग और नृत्य में मानवीय शरीर का महत्व है और शरीर के विविध अंग, उपांग और प्रत्यांग को योग और नृत्य में समझा जा सके ।